नियमसार, गाथा ४२

टीका: —शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीव को समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है—ऐसा यहाँ (इस गाथा में) कहा है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय, जो जीव / भगवान, उसमें किसी प्रकार का भेद, विकार या किसी प्रकार की पर्याय का भेद भी उसमें नहीं है—ऐसा शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद पूर्णानन्द का

नाथ, वह दृष्टि का विषय है। दृष्टि वहाँ जमती है। दृष्टि में आश्रय, आदर द्रव्य का होता है। यह बात करते हैं।

द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से,... क्या कहते हैं? जीव / प्रभु शुद्ध जीव में **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से, जीव को नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।** आहाहा! वस्तुस्वरूप जो अन्दर है, चैतन्यसत्तावलम्बी, उसमें इन चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है। आहाहा! **नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को...** नित्य-शुद्ध, कायम शुद्ध, त्रिकाली शुद्ध **चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक (कुछ) नहीं है।** आहाहा!

स्वरूप चैतन्य ज्योति अन्दर त्रिकाली निरावरण द्रव्य अन्दर विराजता है। त्रिकाली। निगोद में हो या सिद्ध में हो, द्रव्य तो त्रिकाली निरावरण ही है। उसमें अन्तर्दृष्टि करने से ये सब भेदभाव गौण हो जाते हैं। उनका यहाँ अभाव कहा जाता है। वह भाव है अवश्य, व्यवहारनय का विषय है अवश्य। है, उसका निषेध है न? न हो, उसका निषेध कैसा? है अवश्य, परन्तु दृष्टि में अन्तर अनुभव आनन्दकन्द प्रभु में जाने पर उनका निषेध हो जाता है। जो है, उनका निषेध हो जाता है।

चतुर्गति (चार गति के) जीवों के कुल, योनि के भेद, जीव में नहीं हैं... कुल के भेद और योनि के भेद। चौरासी लाख योनि के भेद और कुल तो बहुत हैं। वे सब जीव में नहीं हैं। द्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा में वे नहीं हैं। यह बोल है, वह पढ़ लेना। पश्चात् **पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं;...** ये चौरासी लाख... ये चौरासी लाख योनि आत्मा में नहीं हैं। समुच्चय समझ लेना। अन्त में, **(कुल मिलाकर ८४,००,००० योनि मुख हैं।)** जीव को उत्पत्ति का स्थान। संसार की दशा में चौरासी लाख योनि मुख जीवद्रव्य में नहीं है। पश्चात्...

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त;... सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीव भेद कहते हैं। जीव के चौदह भेद जीव में नहीं हैं। आहाहा! पर्याय है न? जीव की पर्याय जीव के द्रव्य में नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाली आनन्दनाथ चैतन्य अखण्डानन्द प्रभु,

पूर्णानन्द सदा त्रिकाल एकरूप अविनाशी विराजमान है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! बाकी सब चीज़ें हैं। एक के अतिरिक्त, पूरी दुनिया लोकालोक है अवश्य, परन्तु वह सब व्यवहार है। एक के अतिरिक्त, पर्याय आदि से लेकर पूरी दुनिया व्यवहार है। निश्चय में तो एक आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, जिसमें पर्याय का भी अभाव है, ऐसे जीवद्रव्य को समकितरूपी पर्याय का विषय कहने में आया है। आहाहा!

सबेरे भी सूक्ष्म था। सबेरे तो बहुत सरस था। ओहोहो! सबेरे मूल उत्पत्ति के स्थान की बात थी। इस जीवद्रव्य में वह नहीं है, तो वहाँ से लक्ष्य छोड़ दे और त्रिकाली ज्ञायकभाव, जिसमें ये नहीं, वहाँ लक्ष्य लगा दे। इसके लिए यह कहा कि जीव के चौदह भेद **पर्याप्त और अपर्याप्त; स्थूल एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त—ऐसे (चौदह) भेदोंवाले...** जीवस्थान, जीव में जीवस्थान नहीं है। आहाहा! जीव में जीवस्थान नहीं है। ये चौदह भेद हैं। आहाहा! जीव में चौदह भेद / स्थान जो हैं, वे अन्तर में नहीं हैं। सम्यग्दर्शन के विषय में यह चीज़ नहीं है। आहाहा! मूल चीज़ तो सम्यग्दर्शन है। वहाँ से बात शुरु होती है। उसके बिना सब बातें, जानपना और आचरण तथा क्रियाकाण्ड सब संसार है। आहाहा! भगवान आत्मा / जीव को चौदह स्थान भी नहीं हैं। पश्चात् मार्गणा। वस्तु है, मार्गणा वस्तु है, जीवद्रव्य की दृष्टि में नहीं है।

गति,... चार। वह जीवद्रव्य में नहीं है। पाँच **इन्द्रिय,...** जीव में नहीं है। **काय,..** मन, वचन और काया आदि काय का एक भेद है, वह भी आत्मा में नहीं है। **योग,...** पन्द्रह योग जो कहे जाते हैं। चार मन, चार वचन, चार काया, वह सब आत्मा में नहीं है। आहाहा! पर्यायदृष्टि से जानने में आनेवाली वस्तु / चीज़ है, परन्तु द्रव्यदृष्टि से देखने में आवे तो वह चीज़ लक्ष्य में नहीं आती। इस कारण वह चीज़ वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! जीव का स्वभाव, यह जीव की बात बहुत घट गयी, प्रभु! मूल चीज़ परमात्मा स्वयं... आहाहा! इसकी मूल बात घट गयी और प्रवृत्ति की—यह क्रिया करो.. यह क्रिया करो.. यह क्रिया करो.. यह छोड़ो। यह छोड़ो और यह ग्रहण करो। अरे! भगवान! जिस चीज़ में जिसकी अवस्था भी जिसमें नहीं, जिसमें अवस्था भी नहीं, उसमें बाह्य ग्रहण-त्याग कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया क्या कहा?

योग,.. नहीं है। **वेद,..** नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, अरे! अवेद, ये चारों नहीं है। आहाहा! योग में भी योग और अयोग दोनों नहीं हैं। वेद में भी तीन वेद और वेदरहित अवेद भी उसमें (वस्तु में) नहीं है। वह तो पर्याय है। आहाहा! **कषाय,..** क्रोध, मान, माया, लोभ। भगवान अकषाय शान्तस्वरूप, शान्ति का सागर, शान्ति का समुद्र, मात्र शान्ति का गोदाम है। प्रभु आत्मा तो शान्ति का गोदाम है। उसमें से तो शान्ति ही प्रगट होती है। आहाहा! गोदाम देखे हैं न? हम तो मुम्बई माल लेने जाते थे। ये केसर के डिब्बे आते थे, तब तो कीमत बहुत कम थी। एक रुपये की रुपयाभार थी। हम सब व्यापार करते थे। केसर लेने गये तो कोठार.. कोठार देखे हो.. ओहोहो! अनेकों हजार डिब्बे केसर के। केसर के डिब्बे अनेक हजार। आहाहा! उस गोदाम की अपेक्षा इस गोदाम में अनन्त केसर-स्वभाव अन्दर भरा है। यह बड़ा गोदाम प्रभु है। आहा..! क्या कहा?

कषाय,.. ज्ञान,... मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल (ज्ञान)। पाँच ज्ञान भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! पाँचों ज्ञान तो पर्याय है। व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, (परन्तु) आदरणीय नहीं है। अन्तर्दृष्टि करने से ज्ञान का भेद दृष्टि के विषय में नहीं आता। आहाहा! इस कारण से ज्ञान के पाँच भेद भी वस्तु में नहीं है। पर्याय में हो, परन्तु दृष्टि जहाँ पर्याय से छूटकर, पर्याय द्रव्य प्रभु पर गयी.. आहाहा! तो वहाँ तो ज्ञान के भेद भी नहीं हैं। आहाहा! यह सब जानपना और सब बड़ी बातें चाहे जैसी करो। प्रभु! उस ज्ञानस्वरूप अन्दर चैतन्यमूर्ति में ये भेद नहीं हैं। आहाहा!

संयम,.. संयम और असंयम तथा संयमासंयम, ऐसा लेना। एक शब्द में तीनों लेना। ये तीनों नहीं हैं। आत्मा में संयम भी है नहीं, असंयम भी है नहीं, संयमासंयम भी है नहीं। **दर्शन,..** यह दर्शन, चक्षुदर्शन है। समकित की बात बाद में। यह चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, ये चारों आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! केवलदर्शन तो पर्याय है, एक समय की दशा है। सत्ता-चैतन्य की-सत् की सत्ता, महाप्रभु की सत्ता, उसमें केवलज्ञान का भी अभाव है। आहाहा! यहाँ साधारण मतिश्रुतज्ञान (हो), अनुभव बिना उसका अभिमान हो जाए! आहाहा! अरे रे! अन्तर के आनन्द के अनुभव बिना, अन्तर के आत्मा का स्पर्श किये बिना बाहर की बात में अभिमान जाए, प्रभु! यह तो अनन्त बार किया है। आहाहा! इस आत्मा के त्रिकाली द्रव्यदृष्टि दर्शन करने में वह नहीं। पर्याय में है, जानने में है। वस्तु की दृष्टि / दर्शन के विषय में नहीं है। आहाहा!

लेश्या,.. छह द्रव्य और अलेश्या – ये सातों आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! छह लेश्या विकारी पर्याय है, अलेश्या निर्विकारी पर्याय है परन्तु यह पर्याय है। भगवान द्रव्य में वह नहीं है। अलेश्यापना भी भगवान में नहीं है। आहाहा! जिसका लक्ष्य छूट जाता है, वह चीज़ उसमें नहीं है। आहाहा! अन्तर अनुभव करने में चैतन्य तत्त्व की प्राप्ति सम्यक् में प्राप्त करने में सबका लक्ष्य छूट जाता है, वह चीज़ उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तु नहीं है, ऐसा नहीं है; वस्तु तो है, लोकालोक है–सब है।

एक भगवान स्वतन्त्र आत्मा के अतिरिक्त अनन्त सिद्ध भगवान भी भले हों, परन्तु वे सब पर हैं। अनन्त सिद्ध भी पर हैं। आचार्य कहते हैं कि स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य पर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। परद्रव्य का लक्ष्य होने से राग होगा, परन्तु किसे? रागी को राग होगा। रागी नहीं है, उसे लक्ष्य जाने से राग नहीं होगा। आहाहा! जिसे अभी राग पड़ा है, उसे पर की ओर लक्ष्य जाने पर राग उत्पन्न होगा। वह परलक्ष्य (राग की) उत्पत्ति का कारण नहीं, परन्तु राग है, इस कारण से राग उत्पन्न होता है। परलक्ष्य से राग उत्पन्न हो तो केवली तो तीन काल, तीन लोक देखते हैं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

लेश्या,... अलेश्या, वह भी आत्मा में भी नहीं है। **भव्यत्व,...** अभव्यत्व, आत्मा में नहीं है। आहाहा! यह भव्यत्व और अभव्यत्व आत्मा में नहीं है। गोपालदास क्या कहलाते हैं वे? वरैया। उन्होंने लिखा है कि भव्य, वह गुण है। गुण की व्याख्या में भव्य लिया है। यह तो लोगों को समझाने के लिए (कहा है)। गुण तो त्रिकाल रहनेवाले हैं। भव्य, अभव्य यदि गुण हो तो यहाँ तो निषेध करते हैं। भव्य तो पर्याय है। समझ में आया? इसका स्पष्टीकरण तत्त्वार्थसार में अमृतचन्द्राचार्य ने तत्त्वार्थसार में लिया है, उसका अर्थ... एक बंशीधरजी हैं न? दूसरे बंशीधरजी, खूबचन्द्रजी के भाई, सोलापुरवाले, उन्होंने अर्थ किया है। वे तो आये थे, हमारे पास आये थे।

भव्य और अभव्य पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। सिद्ध में भव्यत्व है नहीं। यदि गुण कहो तो त्रिकाल रहे। आहाहा! वह तो पर्याय है। भव्य और अभव्य की पर्याय है। दोनों की पर्याय भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु! उसमें योग्यता और अयोग्यता दो में से एक भी नहीं है। योग्यता तो सब प्रगट हो गयी है। पश्चात् योग्यता क्या? योग्यता अन्दर प्रगट है। भव्य की योग्यता उसमें नहीं। प्रगट हुई वह भले न हो पर्याय में, परन्तु द्रव्य तो योग्यता है। वह भव्यत्वपना भी उसमें नहीं है। वह प्रगट–प्रगट वस्तु पड़ी है। आहाहा!

परम सिद्धान्त, परम सत्सिद्धान्त, उसका जो सिद्धान्त सार, जो तत्त्व भगवान, देह में प्रत्यक्ष विराजमान है। उसमें भव्य-अभव्यपना नहीं है। बहुत से प्रश्न करते हैं कि महाराज! हम भव्य हैं या अभव्य? प्रभु! यह प्रश्न छोड़ दो। भव्य-अभव्य आत्मा में है ही नहीं। एक आर्यिका है, ज्ञानमति। उसने और ऐसा लिखा है कि अपन भव्य हैं या अभव्य, यह अपन नहीं जान सकते, केवली जान सकते हैं। अरे रे! प्रभु! क्या है? यहाँ तो भव्य-अभव्य आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! कठिन बातें हैं, भाई! मूल बात को पकड़ना.. आहाहा! वृक्ष के पत्ते और डालियाँ, टहनियाँ पकड़ना और वृक्ष के फल-फूल पकड़ना, इसकी अपेक्षा वृक्ष का मूल पकड़ना। इसी प्रकार भगवान अन्दर मूल है। पर्याय तो फिर डाली, टहनियाँ हैं। आहाहा! पर्याय, हों! वह फल-फूल है। भव्य-अभव्य नहीं।

सम्यक्त्व,... समकित भी नहीं। यहाँ अकेले समकित की बात नहीं है। सम्यक्, समकितमोहनीय, मिथ्यात्व, मिश्र, यह सब आत्मा में नहीं है। यहाँ तो समकित आत्मा में नहीं है। क्षायिक समकित आत्मा में नहीं है। आहाहा! क्षायिक समकित भी पर्याय है न, प्रभु! एक समय की पर्याय है। पलटती है। भले कायम रहनेवाली है परन्तु पलटती है। भगवान जो त्रिकाली सत्ता सत्। सच्चिदानन्द प्रभु एकरूप विराजमान है। दृष्टि का विषय वह है। आहाहा! दृष्टि का ध्येय अकेला परमात्मा, जिसमें पर्याय का भेद नहीं। दृष्टि स्वयं पर्याय है। समकित कहा न? उसमें है नहीं, ऐसा कहा। सम्यक्त्व नहीं, वह तो पर्याय है। क्षायिक समकित भी उसमें है नहीं। उसका विषय द्रव्य है, परन्तु क्षायिक समकित उस विषय में नहीं। समकिती को क्षायिक समकित भी विषय नहीं है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

अन्दर चैतन्य हीरा, चमत्कारिक शक्तियों का भण्डार, शक्तियों का सागर, स्वभाव का सागर, वह चीज़ क्या है? उस चीज़ में सम्यक्, क्षायिक समकित का भी अभाव है। आहाहा! समकित नहीं, ऐसा नहीं है। पर्याय में है। है अर्थात् क्या? भले हो। आहाहा! वह चीज़ अन्दर में नहीं है। जिसका विषय है, सम्यक् के विषय में समकित नहीं है तथा समकित का विषय समकित नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! अन्तर घर की बातें। आहाहा! सबेरे तो बहुत आया था। बहिन आये? सबेरे तो बहुत आया था। सबेरे अन्तरचक्षु में बहुत आया था। आहाहा!

संज्ञित्व,... संज्ञीपना-मनपना और असंज्ञीपना, ये दोनों आत्मा में नहीं है। **और**

आहार... और निहार और अनाहार, ये दोनों आत्मा में नहीं है। आहार और अनाहार, दोनों पर्याय है। आत्मा में नहीं है। **ऐसे भेदस्वरूप (चौदह) मार्गणास्थान हैं।** है ? मार्गणास्थान है अवश्य। अन्तर में नहीं है। वेदान्त कहता है कि आत्मा सर्व व्यापक एक ही है, कोई गुणभेद नहीं, पर्यायभेद नहीं, अनन्त आत्मा नहीं, वह तो मिथ्यात्व है। ऐसी बात यहाँ नहीं है। यह तो अनन्त हैं। एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय है, मार्गणास्थान भी है, परन्तु आदरणीय नहीं। वहाँ से दृष्टि हटा ले। जानकर उसमें से दृष्टि हटा ले। आहाहा!

मार्गणास्थान.. यह सब, उन भगवान परमात्मा को... आहाहा! भगवान परमात्मा अर्थात् कौन ? यह आत्मा, हों! आहाहा! **सब, उन भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से)...** अर्थात् शुद्धनिश्चय से अन्तर में नहीं है। **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है।** आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जो तीसरे नम्बर पर आये। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मस्तु मंगलम्।' वे कुन्दकुन्दाचार्य। कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य भगवान सूत्रकर्ता। इस सूत्र के कर्ता वे हैं। मूल गाथा के।

भगवान सूत्रकर्ता का... आहाहा! **(श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) (यह) अभिप्राय है।** यह अभिप्राय है। मार्गणा के भेद मति, श्रुत, अवधि, मनः, केवल भी नहीं, ऐसा अभिप्राय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का है। आहाहा! यह तो दृष्टि के विषय में पूर्णता आनेवाली है। उसमें अपूर्णता ही नहीं है। पर्याय है ही नहीं। पर्याय तो उसका विषय करती है। (जिसे) विषय करती है, उसमें पर्याय नहीं है। आहाहा! और पर्यायरहित द्रव्य नहीं है। किसी समय भी पर्याय से रहित द्रव्य हो तो सामान्य अकेला रहे। द्रव्य तो सामान्य-विशेषात्मक दोनों हैं। रात्रि में कहा था, नहीं पण्डितजी ? विशेष बिना तो गधे का सींग जैसा (होगा)। द्रव्य में पर्याय विशेष न हो, प्रगट पर्याय, हों! वह तो गधे की सींग जैसा है। सामान्य-विशेषस्वरूप त्रिकाल द्रव्य है। त्रिकाली द्रव्य सामान्य और विशेष स्वरूप है।

उसमें यहाँ कहते हैं कि विशेष है, वह सामान्य में नहीं है। विशेष, विशेष नहीं है— ऐसा नहीं है। पदार्थ, सामान्य-विशेष पदार्थ है। पदार्थ, सामान्य विशेष ही है। बौद्ध अकेला विशेष मानते हैं, वेदान्त अकेला द्रव्य मानता है। एकान्त ध्रुव.. ध्रुव ही मानता है, बौद्ध अकेला विशेष मानते हैं। दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा!

यहाँ तो सामान्य-विशेष में अकेली पर्याय को माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। पर्याय का विषय द्रव्य माने, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान के घर की है, प्रभु! ऐसी बात रह गयी। आहाहा! दिगम्बर सन्त केवली के पथानुगामी हैं। केवली ने कही, वह बात रह गयी है। और कुन्दकुन्दाचार्य तो साक्षात् भगवान के पास गये थे। समवसरण में साक्षात् आठ दिन सुना और कितनी ही बात श्रुतकेवली से सुनी। भगवान की दिव्यध्वनि आठ दिन सुनी और बीच में समय मिले तो जो श्रुतकेवली थे, उनके साथ चर्चा की, बहुत निर्णय किया। ओहोहो! उन भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय यह है। यहाँ किसी के अभिप्राय में किसी का नहीं चलता। आहाहा!

मार्गणास्थान है। सामान्य-विशेष है। विशेष बिना सामान्य नहीं रहता। समझ में आया? क्योंकि विशेष है, वह जाननेयोग्य तो विशेष है। ध्रुव जाननेयोग्य (जानता) नहीं है। जानने में आता है परन्तु जानने की क्रिया ध्रुव में नहीं है। (ध्रुव) जानता नहीं, जाननस्वरूप है परन्तु जानता नहीं है। जानना, वह तो क्रिया है। आहाहा! वह क्रिया विशेष में होती है। जानने की क्रिया कोई सामान्य में नहीं होती। आहाहा! प्रभु का मार्ग तीन काल में अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! लोगों को भी एकान्त लगता है। एकान्त है, एकान्त है, प्रभु! एकान्त है तो सही, परन्तु सम्यक् एकान्त है। एकान्त है, प्रभु! तुम एकान्त कहते हो, वैसा एकान्त नहीं है।

पर्याय है, ऐसा कहा न! पर्याय नहीं है? यहाँ क्या कहा? मार्गणास्थान है, सब भेद है। हो, पूरी दुनिया हो, लोकालोक हो और अपनी पर्याय भी हो परन्तु वह लोकालोक और पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! लोक में तो परमात्मा पंच परमेष्ठी अनन्त त्रिकाल आ गये। त्रिकाली परमेश्वर (आ गये)।

षट्खण्डागम में तो ऐसा लिया है, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं—ऐसा लिया है। ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती.. आहाहा! त्रिकालवर्ती.. प्रभु! त्रिकालवर्ती शब्द सरल है, परन्तु त्रिकाल—जिसका अन्त नहीं, जिसकी शुरुआत नहीं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। आहाहा! यहाँ तो दूसरा कहना है। कि ये पाँच पर्याय में णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती कहा है परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है। आहाहा!

सूक्ष्म बात है, भाई! ऐसी चीज़ ही है न, नाथ! सूक्ष्म कहो या स्थूल कहो, जो कहो वह, परन्तु यह चीज़ ही ऐसी है.. आहाहा!

उस ओर की दृष्टि नहीं, उस ओर का अनुभव नहीं तथा पर्याय और राग की मन्दता में सब अनादि काल से मान लिया। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। पर्याय और रागबुद्धि से गया। आहाहा! अनन्त काल में एक बार भी सम्यग्दर्शनसहित... प्रवचनसार में तो कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा भी कहते हैं, कदाचित् कोई सच्चे मुनि हैं, भवनपति में जाते हैं, ऐसा पाठ है। छठी गाथा में है। भवनपति में जाते हैं, वह क्या? ऐसा कोई मिथ्यात्व का बन्ध हो गया, परन्तु हैं सच्चे मुनि। मिथ्यात्व आ गया तो वहाँ गये। समझ में आया? क्या कहा? यहाँ प्रवचनसार है? भवनपति आदि में भावलिंगी मुनि जाते हैं और वहाँ से निकलकर मुक्ति प्राप्त करते हैं, ऐसा पाठ है। प्रवचनसार। प्रवचनसार है यहाँ? आहाहा! मुनि आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी (ऐसा कहते हैं)

संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो॥ ६॥

छठी गाथा है। आहाहा! असुर में भी जाते हैं। असुर की पर्याय अन्दर आ गयी। बन्ध हो गया। बाकी दशा तो अन्दर में ऐसी है कि असुर में से निकलकर '**संपज्जदि णिव्वाणं**' आहाहा! छठी गाथा। '**संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।**' देव और असुर और मनुष्य के राजा के वैभव में से निकलकर निर्वाण प्राप्त करेंगे। ऐसी कोई भूल सहज रह गयी होगी तो छूट जायेगी। आहाहा! एक ओर कहे भवनपति और व्यन्तर, ज्योतिष में समकिती नहीं जाता, स्त्री में नहीं जाता। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में नहीं जाता, नारकी, तिर्यंच में नहीं जाता। आहाहा! है या नहीं ऐसा? यहाँ तो कहते हैं मुनि असुर में जाते हैं, पाठ है। और वह '**संपज्जदि णिव्वाणं**' वहाँ से निकलकर तो निर्वाण प्राप्त करेंगे। आहाहा! गजब बात है। यह अन्तर की दृष्टि उघड़ गयी है और ध्यान और आनन्द बहुत है, उसमें कोई ऐसा सहज आ गया, तो असुर की आयु बँध गयी। आहाहा! यह प्रवचनसार है। दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा! उसमें ऐसा कहा, '**संपज्जदि णिव्वाणं**'

सुर-असुर मनुजेन्द्रों के विभवों सहित निर्वाण की,
प्राप्ति करे चारित्र से जीव ज्ञानदर्शन मुख्य से॥६॥

चारित्र से (च्युत होकर) चाहे कोई कदाचित् असुर में गये हों... आहाहा! चारित्र से न जाए परन्तु कोई भूल हो गयी, सहज भूल हो गयी, अन्दर छद्मस्थ हैं। अन्दर में उग्रता बहुत है। आहाहा! यहाँ तो भगवान ने ऐसा कहा कि असुर देवलोक में से (आकर) निर्वाण प्राप्त करेंगे। जो मुनि असुर में से निकलकर मुक्ति को प्राप्त करेंगे '**संपज्जदि णिव्वाणं**' आहाहा! यह भगवान सूत्रकर्ता (कहते हैं)।

एक ओर ऐसा कहे कि समकिती भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष, स्त्री, तिर्यंच, नरक में नहीं जाता। मनुष्य हो वह। आहाहा! जो नारकी समकिती हो, वह मनुष्य में जाता है, तिर्यंच में जो समकिती हो, वह मनुष्य में भी जाता है और स्वर्ग में भी जाता है। नारकी तो स्वर्ग में जाता नहीं। आहाहा! समकिती है तो मनुष्य में आता है और तिर्यंच में समकिती हो, वह कोई मनुष्य में नहीं आता, वे तो स्वर्ग में वैमानिक में जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें से कोई असुरकुमार में गये सच्चे मुनि, आत्मध्यानी, ज्ञानी अन्दर हैं, परन्तु छद्मस्थ है। सहज कोई भूल रह गयी, वह निकल जायेगी। आहाहा! और अल्पकाल में मुक्ति होगी, ऐसा पाठ है। '**संपज्जदि णिव्वाणं**' निर्वाण को प्राप्त करेंगे। आहाहा! जोर सम्यग्दर्शन और चारित्र का है।

आहाहा! किसी को विरुद्ध भी लगे। एक ओर ऐसा कहे कि समकिती भवनपति में नहीं जाता और यहाँ मुनि भवनपति में जाते हैं, ऐसा लिखा है। पाठ में लिखा है। भगवान! छद्मस्थ की बात है। अन्दर में आत्मा का भान होने पर भी, सहज कोई काल में ऐसा आ गया और असुर की गति बँध गये, वहाँ जायेंगे और वहाँ से निकलकर मोक्ष हो जायेगा। आहाहा! यह सब अन्तर में दृष्टि और चारित्र का जोर है। आहाहा! उसमें से ऐसा निकाले, किसी जगह ऐसा कहा, उसके आचार्य वे ऐसा कहें कि व्यन्तर में, भवनपति में तो मिथ्यादृष्टि जाए, समकिती जाए नहीं। यहाँ मुनि जाते हैं, ऐसा कहा है। आहाहा! भाई! उसका अभिप्राय ऐसा है कि अन्तर के दर्शन का जोर तो बहुत है,.. समझ में आया? चारित्र का भी जोर है परन्तु सहज अन्दर किसी समय, छद्मस्थ हैं, ऐसी कोई भूल मस्तिष्क में आ गयी, तो असुरकुमार का आयुष्य बँध गया, परन्तु असुरकुमार में गये और मुनि कुन्दकुन्दाचार्यादि तो वैमानिक में गये, परन्तु दोनों वहाँ से निकलकर मुक्ति में जायेंगे। आहाहा! यह अन्तर के दर्शन का जोर है। आत्मदर्शन, आत्मदर्शन। आहाहा! उसके जोर

में भवनपति में से निकलकर मोक्ष जायेंगे, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार में लिखा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **यह सब, उन भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) नहीं हैं...** ये सब भेद नहीं हैं। आहाहा! भवनपति की पर्याय की तो बात ही कहाँ है! आहाहा! द्रव्यदृष्टि में तो यह कुछ है ही नहीं। आहाहा! परन्तु पर्याय में सहज भूल में आ जा,.. आहाहा! तो भी उसकी मुक्ति दूर नहीं होती। आहाहा! अन्तर के दर्शन और ज्ञान का जोर अन्दर है। थोड़ी भूल रह गयी। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है।** उसमें ऐसा भी आया है। मार्गणा में यह भी आया है। कोई मुनि भवनपति में भी जाते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोकों द्वारा) कहा है कि—आहाहा!

(मालिनी)

'सकलमपि विहायाह्लाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवग्राह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरंतं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम्॥'

भाई नहीं आये? हिम्मतभाई! बुखार आया है? यह सब अर्थ उन्होंने बनाये हैं। टीका में से अर्थ उन्होंने किये हैं।

***श्लोकार्थः*—चित्शक्ति से रहित...** चित्शक्ति अर्थात् सामर्थ्य। चैतन्य के सामर्थ्य के अतिरिक्त **अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** आहाहा! **चित्शक्ति से रहित...** जिसमें ज्ञानसामर्थ्य भरा है, ऐसी शक्ति से रहित। **अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** पर्याय भी आ गयी। चित्शक्ति ली है न? गुण लिया है न? स्वभाव सामर्थ्य लिया है न? आहाहा! यह समयसार का कलश है। **चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का...** आहाहा! दूसरी कोई उपाधि कुछ नहीं, कहते हैं। पर्याय भी लक्ष्य में नहीं। काम / कार्य करे पर्याय। कोई भी द्रव्य निकम्मा नहीं है। निकम्मा नहीं है, इसका अर्थ, (यह कि) कार्यरहित नहीं है। कार्यरहित का अर्थ

(यह कि) पर्यायरहित नहीं है। ऐसा लिखा है ? पर्याय को कार्य कहा है न ? पर्याय को कार्य कहा है, द्रव्य को कारण कहा है। आहाहा! कार्य भी कारण में नहीं है। आहाहा!

चित्शक्तिमात्र... मात्र शब्द है न ? **चित्शक्तिमात्र...** अकेला ज्ञानस्वभावमात्र। पर्याय भी जिसमें नहीं। विषय करती है पर्याय, परन्तु जिसका विषय करती है, उसमें-विषय में पर्याय नहीं है। आहाहा! **चित्शक्तिमात्र...** यह अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। **ऐसे निज आत्मा का...** आहाहा! अकेला ज्ञानस्वरूप प्रभु ध्रुव, सत्.. सत्.. सत्.. सत्व.. सत्व.. सत्व.. यह क्या कहा ? सत् वस्तु का सत्व अर्थात् शक्ति-गुण एकरूप त्रिकाल जो है... आहाहा! उससे रहित **सकल भावों को मूल से छोड़कर...** आहाहा!

चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का... चित्शक्तिमात्र निज आत्मा। आहाहा! यह निर्णय, अनुभव पर्याय में है। यह अनुभव पर्याय में है, परन्तु चित्शक्तिमात्र में यह नहीं है। आहाहा! **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके,...** यह पर्याय। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द ज्ञान का सागर भरा है, उसमें अवगाहन कर, प्रभु! **स्फुटरूप से अवगाहन करके,...** अतिस्फुटरूप से, ऐसी भाषा है। अति प्रगटरूप से। आहाहा! अकेला ज्ञानमात्र अकेला पिण्ड प्रभु, जिसमें लोकालोक और एक समय की पर्याय से लेकर सब छोड़ दे—दृष्टि में से उसे छोड़ दे। वस्तु है। आहाहा!

ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से... ऐसे का ऐसे नहीं, अन्दर प्रगटरूप से। **अवगाहन करके,...** अनुभव करके। ज्ञानस्वभाव भगवान त्रिकाल का अनुभव, वह पर्याय है। वस्तु है, वह त्रिकाली ध्रुव है। उसका अनुभव, वह पर्याय है। वह पर्याय स्फुटरूप से, अति स्फुटरूप से अवगाहन करके। जैसे पानी में अवगाहन करते हैं, वैसे चैतन्यशक्तिमात्र भगवान आत्मा में अति स्फुटरूप से अवगाहन करके। आहाहा! **आत्मा समस्त विश्व के ऊपर...** आत्मा समस्त विश्व के ऊपर। विश्व लिया। आत्मा के अतिरिक्त विश्व लिया। आहाहा!

आत्मा समस्त विश्व के ऊपर... जगत के समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय, परमात्मा भी और अपनी पर्याय.. आहाहा! **विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को...** केवल एक। केवल का अर्थ एक। एकस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें द्वैत नहीं। यह शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं। आहाहा! ऐसे **अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान,...** आहाहा! दोनों सिद्ध

किये। आत्मा के अतिरिक्त विश्व भी है, यह सिद्ध किया। विश्व में आत्मा की पर्याय से लेकर लोकालोक (है, ऐसा सिद्ध किया)। समझ में आया? भगवान आत्मा चित्शक्ति का पिण्ड प्रभु (है), उससे भिन्न अपनी पर्याय से लेकर लोकालोक। आहाहा! **अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को...** मात्र त्रिकाली आत्मा को। परिणमन के ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे। परिणमन वहाँ ले जा। आहाहा! ध्रुव में परिणमन ले जा। परिणमन में परिणमन मत रख। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! एकान्त जैसा लगे, प्रभु! क्या हो? मार्ग तो यह है। अनन्त तीर्थंकरों में यह एक ही प्रकार आता है। एक तीर्थंकर कुछ करे और दूसरे तीर्थंकर कुछ कहे, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

अविनाशी आत्मा को आत्मा में... भाषा देखो! **आत्मा को आत्मा में...** समस्त विश्व पर तैरता **आत्मा को आत्मा में...** आनन्द ज्ञान में। आहाहा! आत्मा को अपने ज्ञान-आनन्द में **साक्षात् अनुभव करो।** आहाहा! साक्षात् अनुभव करो। यह मोक्ष का मार्ग है 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' आहाहा! एक श्लोक में तो कितना भरा है! ओहोहो! **आत्मा में साक्षात् अनुभव करो।** दूसरा श्लोक

***श्लोकार्थः*—चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है...** आहाहा! ज्ञानशक्ति के सामर्थ्यसहित / व्याप्त **जिसका सर्वस्व-सार है..** आत्म-आनन्द ज्ञानस्वरूप पिण्ड अकेला, पर्यायरहित। **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव...** ऐसा यह जीव। आहाहा! **इतना ही मात्र है;... चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है;...** आहाहा! पर्याय नहीं ली। निर्णय पर्याय में होता है, अनुभव पर्याय में होता है परन्तु पर्याय ऐसा कहती है कि इस चित्शक्ति में मेरी पर्याय का भी अभाव है। आहाहा!

जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है; इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं। आहाहा! वाणी बहुत कठोर। ध्रुवस्वभाव के अतिरिक्त सब पुद्गल हैं। पर्याय को पुद्गल कह दिया। आहाहा! अपनी चीज़ में अन्दर नहीं है। विश्व से ऊपर रहनेवाला अर्थात् पूरी दुनिया और पर्याय से भी भिन्न रहनेवाला.. आहाहा! इसके अतिरिक्त समस्त भाव पौद्गलिक हैं। विशेष कहेंगे...

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)